शिक्षकों की कलम से

विगत कुछ अंकों से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार चार अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, एक छोटी-सी गुज़ारिश है कि आप अपने अनुभवों को भी ज़रूर साझा करें।

1. नागरिकता के सन्दर्भ ..... अंजना त्रिवेदी
2. भरपाई की भरपाई ..... रवि कान्त
3. चलते-चलते ..... कमल किशोर मालवीय
4. मापन - एक अनुभव ..... योगेश कुमार पाण्डे

नागरिकता के सन्दर्भ और आधार

अंजना त्रिवेदी

नागरिकता को सदैव ही एक व्यापक राजनैतिक फलक में देखा जाता है - व्यक्ति, नागरिक और समुदाय के अस्तित्व को साथ जोड़कर नहीं। यहाँ मैंने एक बच्चे के जीवन और परिस्थितियों से उपजे हालात को भावी नागरिक और नागरिकता के चश्मे से देखने का प्रयास किया है।

शासकीय शालाओं में जाने वाले ज़्यादातर बच्चों का स्कूल 11 बजे से होता है। सुबह के ग्यारह बजे यानी कुछ बच्चों के लिए थोड़ा आराम से सोकर स्कूल जाने का मौका तो किन्हीं बच्चों के लिए घर में बड़ों के काम में मदद करके स्कूल जाने का समय।

स्कूल का नज़ारा

भागा-दौड़ी में हाँफते, अपने कपड़ों और बालों को ठीक करते लड़के-लड़कियाँ। स्कूल की दहलीज़ पर कदम रखते-रखते कुछ बच्चों को देर हो ही जाती है। इधर-उधर देखते हुए वे येन-केन प्रकारेण प्रार्थना में पहुँचना चाहते हैं, किन्तु प्रार्थना के पहले स्कूल का चैनल गेट बन्द हो जाता है। प्रार्थना के बाद पहुँचने पर सज़ा का खौफ। एक शिक्षक अनुशासन को पुख्ता करने और विद्यार्थियों को सजग करने के लिए स्कूल के दरवाज़े के बाहर खड़े हैं और देर से पहुँची लड़कियों और लड़कों को अलग-अलग खड़े होने के निर्देश देते हैं। पहरेदार की तरह खड़े शिक्षक की कद-काठी किसी पहलवान से कम नहीं है और उनकी पदचाप सौ तोपों की सलामी-सी है। उनकी आँखों में इन लेट पहुँचे बच्चों के प्रति बेहद गुस्सा दिखाई देता है।

खौफ और बेचैनी

भागते आते बच्चों की अफरा-तफरी में आठवीं के एक बच्चे पर मेरी नज़र पड़ती है। स्कूल बैग फटा होने से आड़ी तिरछी हुई पानी की बॉटल बाहर के माहौल को झाँक रही है। बच्चा घबराते, सँकुचाते उसे धीरे-धीरे अन्दर सरकाते हुए उसकी सीमा दिखाने का प्रयास करता है किन्तु बैग की हिम्मत ने जवाब दे दिया और पानी की बोतल बाहर आकर मैदान में लुढ़कने लगी। बच्चा अपनी बॉटल को उठाने के लिए दौड़ा। शिक्षक ने परिस्थितियों को समझे बिना बच्चे को ठीक से खड़े होने के निर्देश देते हुए गाल पर दो-तीन तमाचे जड़ दिए। बच्चा इस मार से अत्यन्त शर्मिन्दा होते हुए गर्दन नीची कर

कुछ सवाल

- बच्चों के लिए नागरिकता के मायने क्या हैं?
- क्या बच्चा भावी नागरिक नहीं है?
- क्या उसे सम्मानपूर्वक जीवन जीने का हक नहीं है?
- एक समुदाय के प्रति तथाकथित संस्थाओं का सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए?
- स्कूल का अनुशासन और बच्चों के जीवन में घट रही घटनाओं का कोई जुड़ाव है या नहीं?
- शिक्षक का दमनकारी रवैया बच्चे के भविष्य को क्या स्वरूप दे रहा है?

ऐसे सवालों के जवाब, समुदाय और संस्थाओं को ढूँढ़ने होंगे।

बुदबुदाने लगा। शिक्षक की धमकी भरी आवाज़ आई, "ज़्यादा मुँह चलाया तो दो-तीन और पड़ जाएँगे।"

नागरिकता के मायने

उन्नीसवीं शताब्दी में देश में पूंजीवाद, बाज़ारवाद और उदारवाद का प्रभाव तेज़ी से बढ़ा। इसके साथ ही, निजी और आपस में टकराने वाले सार्वजनिक हितों से युक्त व्यक्तियों के रूप में नागरिक की अवधारणा को बढ़ावा मिला। इस रूप में नागरिकता की अवधारणा को प्राथमिकता मिलने के चलते नागरिकता को, नागरिक गतिविधि, सार्वजनिक भावना या सक्रिय राजनीतिक सहभागिता के रूप में देखने की प्रवृत्ति अतीत की बातें बन गईं। बीसवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में उदारवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत नागरिकता को व्यक्तिगत नागरिकों के रूप में देखने का पूर्वाग्रह कायम रहा। उदारवादी सिद्धान्त में नागरिकता को ऐसी कानूनी हैसियत के रूप में देखा गया, जो नागरिकों को कुछ निश्चित अधिकार देता है। सम्मानपूर्वक जीवन का हक देता है।

कबीर के साथ संवाद के अंशः

मैंने पूछाः तुम्हारा नाम क्या है?

उसने कहाः कबीर।

मैंः नाम बहुत प्यारा है।

कबीरः क्यों?

मैंः क्योंकि इस नाम में सभी धर्म हैं और कबीर के भजन तो मेरे प्रिय हैं। तुमने कभी कबीर के भजन सुने हैं।

कबीरः नहीं। माँ कहती है कबीर जी बहुत बड़े आदमी थे। और मैं भी बड़ा आदमी बनूँगा।

बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने पूछाः तुम कहाँ रहते हो?

कबीरः भोपाल की दस नम्बर की बस्ती में।

मैं: पिताजी क्या करते हैं?

कबीरः सब्ज़ी और फल का ठेला लगाते हैं।

मैं: अच्छा, घर पर कौन-कौन है?

कबीरः चार भाई-बहन थे पर पिछले साल डेंगू से छोटी बहन मर गई। एक भाई जब एक साल का था तब बीमारी से मर गया। मेरी माँ आसपास के घरों में कपड़े धोने जाती है।

मैं: क्या पिताजी के काम में तुम भी मदद करते हो?

कबीरः हाँ, आज पिताजी ने सुबह ही घर से ठेला लेकर मुझे भेज दिया यह कहते हुए कि थोड़ी देर में मैं आ जाऊँगा। जब वे 10.30 बजे तक नहीं आए तो माँ को फोन किया, तब माँ मेरे कपड़े, खाना और बस्ता लेकर ठेले पर आई। वहीं से भागकर मैं स्कूल आया और इसके चलते ही देर हो गई।

मैं: खाना खाया था सुबह?

कबीरः नहीं। मैं स्कूल में ही खाना खाता हूँ।

मैं: पिताजी आज ठेले पर क्यों नहीं आए?

कबीरः माँ ने तो कुछ नहीं बताया किन्तु कभी-कभी पिताजी सुबह से ही दारू पी लेते हैं।

इस परिदृश्य में वर्तमान दौर के हर गरीब बच्चे का एक आम संघर्ष दिखाई देता है। आम मजदूर परिवार में जीने वाले बच्चे की गाहे-बगाहे यही कहानी है। बच्चा जो महज़ 13-14 साल का है, वह घर का काम करके स्कूल आ रहा है, खाली पेट। एक परिवार अपनी ज़िन्दगी से जद्दोजहद करता नज़र आ रहा है। संघर्ष करती माँ और अपने हिस्से के

सपनों को पूरा करने में लगा बच्चा।

इस देश के वैश्वीकरण वाले मॉडल और शिक्षा में इन बच्चों को किसी तरह की कोई जगह मिल भी पाएगी या नहीं? हम इस स्वतंत्र भारत के नागरिक को केवल पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से राज्य और केन्द्र सरकार के कार्य और उनकी व्यवस्थाओं के बारे में ही बताएँगे या उसके जीवन से जोड़कर भी देख-समझ पाएँगे?

एनसीएफ 2005 ने बच्चों के अनुभवों और वे किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं, उसे पाठ्यपुस्तक में जगह देने की वकालत की, जिससे बच्चे सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार को जीवन के सन्दर्भ में देख सकें। और इस वजह से कम-से-कम एन.सी.ई.आर.टी. की मौजूदा किताबें सरकारों की नीति और रीति की बजाय बच्चों को केन्द्र में रखकर बनाई गई हैं।

बच्चे के लिए स्कूल, काम और परिवार के मायने को समझना आवश्यक है। उसे समुदाय में विभिन्न परिस्थितियों को समझना और उसे अंगीकार करना आवश्यक होगा। देश की नागरिकता में सभी समुदाय और समुदाय के बच्चों की अपनी गरिमा और अस्तित्व भी शामिल होता है। शिक्षकों की भूमिका और बच्चों के लिए सम्भावनाओं को नए सिरे से तलाशना होगा ताकि बच्चों में हीन भावना न आ सके और उनकी उम्मीदों और सवालों को भी जगह मिल पाए।

अंजना त्रिवेदी: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, भोपाल में कार्यरत हैं।
सभी चित्र: नीलेश गहलोत: चित्रकार हैं। धार गवर्नमेंट आर्ट कॉलेज से चित्रकारी की पढ़ाई। धार में निवास। वर्तमान में रियाज़ अकेडमी, एकलव्य से इलस्ट्रेशन का कोर्स कर रहे हैं।